

वेदों में योगतत्त्व का विवेचन

हेमराज पलसानिया

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बूंदी,
कोटा विश्वविद्यालय कोटा (राजस्थान)

डॉ. प्रतिभा किरण

शोध पर्यवेक्षक, आचार्य, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बूंदी (राजस्थान)



शोध सारांश

वेद मानव जाति के लिए आदिम ज्ञान स्रोत है। वेदों में मनुष्य के मानसिक, शारीरिक एवं चारित्रिक विकास के लिए आवश्यक क्रियाओं, व्यवहार तथा दर्शन का सांगोपांग वैज्ञानिक वर्णन मिलता है। मनुष्य को एक व्यक्तिगत इकाई न मानकर प्रकृति के महत्वपूर्ण घटक के रूप में स्वीकार किया गया है। इस हेतु उसकी अन्तश्चेतना के विकास पर सर्वाधिक बल दिया गया है। अन्तश्चेतना अथवा आन्तरिक विकास में सम्पूर्ण मानसिक तथा शारीरिक विकास के लिए आवश्यक क्रिया-विधियों को सम्मिलित किया जाता है। उनको वैदिक वाङ्मय में योग रूप में अभिहित किया गया है। वेदों में योग तत्त्व से सम्बन्धित विपुल साहित्य विद्यमान है। योग विद्या के बिना वेद रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। वैदिक ज्ञान का संलक्ष्य आत्म तत्त्व की प्राप्ति रहा है और आत्म तत्त्व की प्राप्ति योग विद्या से ही सम्भव है। वैदिक संहिताओं में मोक्ष प्राप्ति तथा आत्मा से परमात्मा के मिलन के लिए दैवीय उपासना, याज्ञिक कर्म, धार्मिक अनुष्ठान, विद्या प्राप्ति, सत्संगति तथा योगाभ्यास आदि साधनों का प्रतिपादन किया गया है। इसके अन्तर्गत सप्त नाडी, अष्टचक्र, नवद्वार, त्रिगुण, पञ्चप्राण, सुषुम्ना नाडी, प्राणायाम इत्यादि यौगिक क्रियाओं का सूक्ष्म रूप से वर्णन किया गया है। इस शोध पत्र के द्वारा वर्णनात्मक विधि, ऐतिहासिक विधि एवं अन्वेषण विधियों के माध्यम से विभिन्न वैदिकीय यौगिक तत्त्वों को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर—आत्मतत्त्व, साक्षात्कार, विद्या, यज्ञिककर्म, प्राणतत्त्व, युक्त, ब्रह्मविद्, आध्यात्मिक

प्रस्तावना

“सर्वज्ञानमयो हि सः”¹ संसार की सकल विद्याओं का मूल वेदों में सन्निहित है। वेदों का मूल विषय ज्ञान है। अर्थात् लौकिक व अलौकिक विषयों का ज्ञान वेदों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। आत्म, अध्यात्म, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, खगोल, भूगोल, ज्योतिष, अभियान्त्रिक, गणित, रसायन, भौतिक, औषधि, इतिहास, संस्कृति, धर्म तथा योग इत्यादि विषयों के सम्बन्धित ज्ञान से वेद परिपूर्ण हैं। योग में जीवन की सुषुप्त, अविज्ञात तथा अजाग्रत शक्तियों को जाग्रत कर व्यक्तित्व को परम शिखर तक पहुँचाने की अपूर्व क्षमता है। योग प्राचीन महर्षियों तथा तत्त्ववेत्ताओं द्वारा प्रतिपादित एक सर्वोत्कृष्ट विद्या है, जिसमें कि सम्पूर्ण मानव जाति के समग्र उत्थान, विकास एवं उत्कर्ष

के लिए अनेकानेक उपायोपागम सन्नियोजित हैं। इस प्रकार योग जीवन का एक शान्ति पथ है जिस पथ पर चलकर मनुष्य एक सुव्यवस्थित तथा आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकता है। योग परम्परा तो अनादि काल से ही सृष्टि में किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। भगवान शिव (रुद्र) को योग विद्या के प्रथम गुरु या आदि योगी माना जाता है। भगवान शिव ने सप्त ऋषियों को योग का गूढ़ ज्ञान प्रदान किया फिर सप्त ऋषियों ने अन्य ऋषियों में इस ज्ञान को सञ्चरित किया। वैदिक ऋषियों ने योग साधना द्वारा ध्यान की उच्चावस्था में समाधिस्थ होकर ही मन्त्रों का साक्षात् दर्शन किया इसलिए वैदिक ऋषि साक्षात्कृतधर्मा अर्थात् मन्त्र दृष्टा कहलाये। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के उत्खनन से प्राप्त प्राचीन अवशेषों, योग साधना

करती मूर्तियों व मुद्राओं (सिक्कों) पर उत्कीर्ण ध्यानमुद्रा, नासाग्रदृष्टिमुद्रा, कायोत्सर्गमुद्राओं से योग की प्राचीनता के बारे में जानकारी मिलती है जो इस बात का प्रमाणित करती है कि वैदिक ऋषियों ने योग साधना से ही आत्म तत्त्व तथा सृष्टि विज्ञान को जाना। वैदिक संहिताओं में योग तत्त्व निगूढरूप में विद्यमान है। योग का बीज व फल वेद ही है जैसा कि गोरक्ष शतक में कहा गया है—

द्विजसेवितशाखस्य श्रुति कल्पतरोः फलम्।

शमनं भव तापस्य योगं भजति सज्जनः॥12

अर्थात् वेद रूपी कल्पवृक्ष का फल योगशास्त्र है। इस योगशास्त्र के सेवन से संसार के त्रिविध तापों (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक) का शमन होता है। वैदिक योग साधना का मुख्य ध्येय है आत्मा का परमात्मा के साथ ऐक्य होना। जैसा कि ऋग्वेद में कहा है—हे अग्निदेव! तुम हमारे और हम तुम्हारे बन जाए अर्थात् एक हो जाए और तेरी कृपा से हमारा जीवन सत्कर्म में प्रवृत्त हो जाए।

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।

स्युष्टे सत्या इहाशिषः॥13

वेदों में योग को एक यज्ञ माना। जो मुख्य रूप से दो प्रकार का है। जिन ब्रह्मादि सूर्यादि नित्य तत्त्वों से अनित्य तत्त्वों का उत्तरोत्तर विकास होता है उसे सृष्टि यज्ञ कहते हैं। तथा जिन अनित्य तत्त्वों से योग द्वारा नित्य तत्त्वों की सृष्टि करके अनुभूति की जाती है, उसे अतिसृष्टि या योगयज्ञ कहते हैं। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय इन्हीं दो प्रकार की सृष्टिओं से ओतप्रोत है। वैदिक ऋषियों ने सृष्टि और अतिसृष्टि के तत्त्वों का साक्षात्कार या अनुभव किया था—

“को ददर्श प्रथमं जायमानम्”⁴

“अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्”⁵
मैंने उस प्राण रूप गायों के स्वामी को साक्षात् करके देखा है।

“अपश्यं ग्रामं वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमानम्”⁶
अनादि काल से प्रकृति प्राणी समूह को वहन कर रही है और वहन करते हुए मैंने उसे पुरुष को देखा है।

नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम्।

दिवो न सद्यमखसम्॥7

मैंने तुमको अपने मन से ज्ञात करते या अनुभूति लेते साक्षात् देखा मैंने प्राणों की समाधि में मन के द्वारा तुम्हें साक्षात् देखा।

एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्मन्धि।

आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान्॥8

हमारे प्राण-अपान शरीर रूपी रथ से योजित दो वृषभों के समान हैं। हे परमात्मा! तू इन्हें कभी शरीर से अलग न करे। उस जीव के सूक्ष्म प्राण ही उसे लक्ष्य तक पहुँचाते हैं। इन दो प्रकार की सृष्टियों को वैदिक ऋषियों ने द्वे चक्रे, द्वे अरणी, द्वे स्तुती आदि नामों से पुकारा है—“ते द्वे अरणी ययोर्जन्मज्जन्मत्रिहितो जातवेदारू”⁹ इन्हीं को देवमार्ग (उत्तरायण), पितृ और मनुष्य मार्ग (दक्षिणायन) कहा है। योगी लोग दक्षिणायनीय आत्मा को ध्यान आदि प्रक्रियाओं से अतिसृष्टि करके उसकी अनुभूति करते हैं अर्थात् उसका साक्षात्कार करते हैं। उसमें नित्य मग्न रहते हैं। ध्यानादि प्रक्रिया में प्राण तत्त्वों को विश्व देवताओं की उपासना में लगा देते हैं। ऋत्विज् का मुख्य कार्य अपने-अपने देवता को उद्दीप्त करना है। सब के देवता उद्दीप्त होते ही समाधि योग यज्ञ को प्रस्तुत करके इनके शरीर उद्दीप्त सोम का पान करने लगते हैं। पुरुष या सोम का भोक्ता नाम इसी योग का पृथक् नाम है। जब योगी सोम का पान करता है तो सोम भी उस योगी के आत्मेन्द्रिय मन आदि का भोग करता है। यह भोग सब करते हैं। आत्मेन्द्रिय मन भी सोम पान की उन्मादकता रूप भोग पाए बिना नहीं रह सकता। इस भोग अवस्था का ही नाम विष्णु का परम पद या परागति कहा जाता है।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।

विष्णोर्यत्परमं पदम्॥10

प्राण रूप योगी ऋषि जाग्रत रहकर योग प्रक्रिया में संलग्न होकर विष्णु के परम पद को उद्दीप्त करते हैं अर्थात् प्राणों द्वारा अपने आत्मा रूपी देवताओं की अतिसृष्टि करना है।

कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः॥11

अश्विनी कुमारों की स्तुति करते हुए कहा गया है कि कब प्राण का योग रसमय ब्रह्म के साथ हो सकेगा जिससे हे नासत्य! तुम उस सत्य नामक अमृत तत्त्व को प्राप्त हो सकोगे। यहां योग शब्द जोड़ने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

योगानुष्ठान के बिना कर्मों को करना अनुचित बताया है—

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।

स धीनां योगमिन्वति॥12

जिस सदसस्पति देव की दया के बिना विद्वान् का यज्ञ भी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर पाता। वह देव सब मनुष्यों की बुद्धि और

कर्मों के योग (संयोग) को जानता है अतः ज्ञानियों को अपनी बुद्धि एवं कर्मों का योग करना चाहिए। योग से विवेकख्याति व ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होती है जैसा कि इन्द्र की स्तुति करते हुए कहा गया है—

स चा नो योग अ भुवत्स राये स पुरंध्याम्।

गमद्वाजेभिरा स नः॥¹³

इन्द्र अपनी विभिन्न शक्तियों द्वारा हमें प्राप्त हो जिससे हम विवेकख्याति व ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त कर सकें अर्थात् वह इन्द्र हमारे योग का साधन या साध्य हो।

सविता देव की स्तुति करते हुए कहा गया है कि जैसे महान् स्तुति का पात्र सभी मार्गों का ज्ञाता सविता देव अकेले ही यज्ञ को धारण करता है अर्थात् चित्त को धारण करता है वैसे ही बुद्धिमान् योगीजन सम्पूर्ण जगत् के उत्पन्न करने वाले सम्पूर्ण जगत् के प्रकाशक परमात्मा में मन और बुद्धि को युक्त करते हैं अर्थात् लगाते हैं।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो
विपश्चितः।

वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः
परिष्टुतिः॥¹⁴

यजुर्वेद के सोहलवें (रूद्राध्याय) में यौगिक मुद्राओं का उल्लेख मिलता है तथा ग्यारहवें अध्याय के प्रारम्भिक सात मन्त्रों में योगाभ्यास का उपदेश दिया गया है। योगाभ्यास से आत्मा-परमात्मा को जोड़कर अविद्या आदि क्लेशों से मुक्त होकर दिव्य गुणों को उत्पन्न करता है अर्थात् नित्य सुखों को भोगता है।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।

स्वर्ग्या य शक्त्या॥¹⁵

युजे वां ब्रह्म पूर्वं नमोभिर्वि श्लोकऽएतु पथ्येव सूरैः।

शृण्वन्तु विश्वेऽमृतस्य पुत्राऽआ ये धामानि दिव्यानि
तस्थुः॥¹⁶

योगाभ्यास के ज्ञान को चाहने वाले मनुष्यों को चाहिए कि योग में कुशल विद्वानों का सङ्ग करें। उन के सङ्ग से योग की विधि को जान के ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करें। जैसे विद्वान् का प्रकाशित किया हुआ धर्म मार्ग सब को सुख से प्राप्त होता है, वैसे ही योगाभ्यासियों के सङ्ग से योगविधि सहज में प्राप्त होती है। कोई भी जीवात्मा इस सङ्ग और ब्रह्मज्ञान के अभ्यास के बिना पवित्र होकर सब सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता,

इसीलिए उस योगविधि के साथ ही सब मनुष्य परब्रह्म की उपासना करें। योग का नाम योगक्षेम (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति कराने वाल) भी है क्योंकि योग ही कल्याण या श्रेय का एक मात्र उपाय है—

“योगक्षेमो नः कल्पताम्”¹⁷ “योगो वै क्षेम”

योग साधना में आने वाले विघ्नों को दूर करने के लिए इन्द्र से प्रार्थना की गई है—

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।

सखाय इन्द्रमृतये॥¹⁸

हम मित्र के समान शक्तिशाली इन्द्र का आह्वान करते हैं, जो उन्नति व अति कठिनता से प्राप्त होने वाले पदार्थ (योगे योगे) अर्थात् प्रत्येक उत्तम कार्य में हमारी सहायता करें। ऋग्वेद के एक मन्त्र में सप्तनद्यः (सप्त नादियों) का उल्लेख मिलता है—

तव त्वे सोम पवमान निण्ये विश्वेदेवास्त्रम एकादशासः।

दश स्वधामिरधि सानौ अव्ये मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त
यह्नीः॥¹⁹

हे परमात्मा (सोम)! आपके लिए सम्पूर्ण देव तैंतीस देव पांच सूक्ष्म भूत और पांच स्थूल भूतों की सूक्ष्म शक्तियों द्वारा आपके उच्च स्वरूप को शोधित करते हैं तथा सात नदियाँ संस्कार करती हैं। इस मन्त्र में योगविद्या का वर्णन किया गया है और सप्तनद्यः से तात्पर्य सात प्रकार की नादियों से है। सात प्रकार की नादियाँ इड़ा-पिंगला आदि मनुष्य के शरीर में विद्यमान रहती हैं। योगी पुरुष इन नादियों के द्वारा संयम करके परमात्मा को प्राप्त करता है। सामवेद में ॐ प्रणव है। साम का रस ही यह उद्गीथ है। ॐ प्रणव संगीत विद्या से ही उपजा है और ओंकार योग में एकाग्रता के लिए परम आवश्यक माना है। जब मन की संगीतमय संगति हो जाती है तभी जीव परमात्मा के सच्चिदानन्द स्वरूप की अनुभूति करने लगता है।

अथर्ववेद में मानव शरीर का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया गया है—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूर्योध्या।

तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽवृतः॥²⁰

यह मानव शरीर आठ चक्रों (मूलाधार चक्र, स्वधिष्ठान चक्र, मणिपूरक चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र, ललना चक्र, आज्ञा चक्र तथा सहस्रार चक्र) तथा नौ द्वारों (दो आँख, दो

नासिका छिद्र, दो कान, एक मुख, दो मल-मूत्र के द्वार) से युक्त देवों की (अयोध्या) कभी पराजित न होने वाली नगरी है, इसी नगरी में ज्योति से ढका हुआ हिरण्यमयकोश (हृदय) है, जिसमें ज्योति से परिपूर्ण आत्मिक आनन्द का भण्डार परमात्मा विराजमान है। योगी लोग योग-साधना के द्वारा इन चक्रों का भेदन करते हुए उस ज्योतिस्वरूप परमात्मा का दर्शन करते हैं।

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्परे त्रिप्रतिष्ठिते।

तस्मिन् यद् यक्षमात्मवत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥²¹

तीन अरों से युक्त, तीन केंद्रों में स्थित, तेजस्वी हिरण्यमय कोश में जो यजन योग्य आत्मा का स्थान है, उसके अस्तित्व का ज्ञान ब्रह्मविद् व्यक्ति को ही होता है। सामान्यजन अपनी आत्मविस्मृति में ही जीवन जीते हैं। यह अज्ञानता ही जीवात्मा को जन्म-मरण के चक्र में डाले रखती है। योगाभ्यास के द्वारा जब जीवात्मा को अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, तो वह जन्म-मरण के इस चक्र से बाहर हो जाता है।

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।

योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च
नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु॥²²

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस मन्त्र के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासनाविषय पर कहा है—हे परमेश्वर! अट्ठाईस (दश इन्द्रिय, दश प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल) कल्याणकारक और सुखकारक होकर एक साथ मेरे उपासना योग को करें। उस योग को और रक्षा को मैं प्राप्त होऊँ अर्थात् योग के द्वारा रक्षा को प्राप्त होऊँ और रक्षा को और योग को अर्थात् रक्षा से योग को मैं प्राप्त होऊँ, इसलिए मेरा तुझ को दिन-रात नमस्कार होवे अर्थात् ये अट्ठाईस तत्त्व हमारी योग साधना के अनुकूल हों ताकि हम अध्यात्म योग साधना का अभ्यास कर सकें। इससे हम रक्षा को और उस रक्षा से योग में पूर्णता को प्राप्त कर सकें।

निष्कर्ष

योग का सम्बन्ध किसी व्यक्ति, राष्ट्र, धर्म, जाति या लिङ्ग विशेष से नहीं है अपितु यह तो एक जगत् कल्याणकारिणी अमूल्य निधि है जो प्रत्येक व्यक्ति, राष्ट्र, धर्म, जाति व लिङ्ग की जीवन पद्धति से जुड़ा है। योग जीवन का एक शान्ति पथ है जिस पथ पर चलकर मनुष्य एक सुव्यवस्थित तथा आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकता है। योग एक जीवन विज्ञान है, एक जीवन शैली है, जीने की उत्कृष्ट कला है तथा जीवन

दर्शन है। प्राचीन महर्षियों की योगमय जीवन शैली थी। उनका प्रत्येक कर्म योग से निबद्ध था। उनके विविध क्रियाकलापों तथा आयामों में सर्वत्र योग विद्यमान था। वे अन्तःकरण की शुद्धता के लिए देवताओं की संस्तुति करते थे ताकि वे परम तत्त्व को प्राप्त कर सकें। व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास कर संयमित, शान्त, संतुलित व स्वस्थ समाज का निर्माण करना तथा परम तत्त्व की अनुभूति करना ही योग का उद्देश्य रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य मनु, मनुस्मृति 2/7, व्याख्याकार शर्मा गिरधर गोपाल, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2014, पृ.सं. 63
2. योगी गोरखनाथ, गोरक्ष पद्धति श्लोक सं. 6, टीकाकार श्रीवास्तव रामलाल, गोरक्षनाथ मन्दिर गोरखपुर, 2017, पृ.सं. 3
3. आचार्य तीर्थ वेदान्त, ऋग्वेद 8.44.23, भाग-3, मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2022, पृ.सं.331
4. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.164.4 भाग-1, पृ.सं. 339
5. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.164.31 भाग-1, पृ.सं. 344
6. उपर्युक्त, ऋग्वेद 10.27.19 भाग-4, पृ.सं. 263
7. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.18.9 भाग-1, पृ.सं.
8. उपर्युक्त, ऋग्वेद 10.27.20 भाग-4, पृ.सं. 263
9. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.22.21 भाग-1, पृ.सं. 57
10. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.34.9 भाग-1, पृ.सं. 87
11. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.18.7 भाग-1, पृ.सं. 50
12. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.5.3 भाग-1, पृ.सं. 28
13. उपर्युक्त, ऋग्वेद 5.81.1 भाग-2, पृ.सं. 398
14. उपर्युक्त, यजुर्वेद 11.2, पृ.सं. 139
15. उपर्युक्त, यजुर्वेद 11.5, पृ.सं. 140
16. उपर्युक्त, यजुर्वेद 22.22, पृ.सं. 139
17. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.30.7 भाग-1, पृ.सं. 74
18. उपर्युक्त, ऋग्वेद 9.92.4 भाग-4, पृ.सं. 192
19. उपर्युक्त, अथर्ववेद 10.2.31 भाग-4, पृ.सं. 544
20. उपर्युक्त, अथर्ववेद 10.2.32 भाग-1, पृ.सं. 544
21. उपर्युक्त, अथर्ववेद 19.8.2 भाग -2, पृ.सं. 312
22. कल्याण, योगाङ्क, गीताप्रेस गोरखपुर, श्रावण विक्रम संवत् 1992
23. जोशी, पं. हरिशंकर, वैदिक योगसूत्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी, सं. प्रथम, विक्रम संवत् 2024